THE TIMES OF INDIA

Date:30-11-20

Demand deficiency

GDP data flags an urgent need to revitalise private consumption

TOI Editorials

The GDP data for the second quarter of 2020-21 conveys a mixed picture. GDP shrank 7.5% to Rs 33.14 lakh crore. This is the first recession, or two successive quarters of contraction, since quarterly data became available. But the decline is lower than the 9.8% forecast by RBI in its monetary policy last month. To that extent, the silver lining is that the recovery from the first quarter's contraction of 23.9% is a bit better than expected. Granular data however shows that the economy remains in a bad shape. This really calls for smart intervention by the Centre.

Strength of private consumption is an important economic indicator. It is the largest component of GDP and it fell in the second quarter by 11.3% to Rs 17.96 lakh crore. This is telling of what has happened to the purchasing power of consumers. There is little doubt that the pandemic induced economic collapse, coming of course on the heels of two successive years of an economic slowdown, has resulted in serious damage. It's only agriculture which has largely escaped damage, which means it's imperative the government address anxiety over agricultural reforms before this hurts the sector.

Since the lockdown was imposed in the last week of March, the government has also got cracking on pending reforms in factor markets such as labour and has designed packages to encourage manufacturing competitiveness. These reforms are largely aimed at removing bottlenecks which restrain the supply side of the economy. The implicit assumption is that reforms will catalyse private investment and set off a virtuous cycle. There is a catch here. A significant part of the private investment will be influenced by the strength of domestic demand. Hence, the Atmanirbhar Bharat idea spelt out by Prime Minister Narendra Modi included domestic demand as one of its pillars.

The immediate task is for the government to address weak domestic demand. Many of the supply side measures will fulfil their potential only if there are clear signs of a revival in domestic demand. This calls for shuffling of prioritisation, if necessary, to focus on revival of domestic demand. Even if the government does not want to expand its borrowing programme in the residual four months of the financial year, there are other ways to revive purchasing power. For example, hastening execution of its existing infrastructure projects needs top priority as this will address the current economic challenges.

Date:30-11-20

मुक्त व्यापार को तर्कसंगत बनाने की पहल

रमेश कुमार दुबे , (लेखक केंद्रीय सचिवालय सेवा में अधिकारी हैं)

एक ऐसे दौर में जब वैश्वीकरण अपनी चमक खो रहा हो तब 15 देशों द्वारा दुनिया के सबसे बड़े व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर करना कम महत्वपूर्ण नहीं है। दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद में तीस फीसद योगदान देने वाले क्षेत्रीय समग्र व्यापारिक भागीदारी (आरसेप) समझौते पर वियतनाम की राजधानी हनोई में वर्चुअल बैठक के दौरान हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते में आसियान के दस सदस्य देशों के अलावा जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और चीन शामिल हैं। इन देशों को दो वर्ष के भीतर समझौते को अनुमोदित करना होगा, जिसके बाद यह लागू हो जाएगा।समझौते में शामिल देशों का मानना है कि कोविड-19 के कारण बनी महामंदी जैसे हालात को सुधारने में इससे मदद मिलेगी। समझौते के मुताबिक आरसेप अगले बीस वर्षों के भीतर कई तरह के सामानों पर सीमा शुल्क खत्म करेगा। इसमें बौद्धिक संपदा, दूरसंचार, वित्तीय सेवाएं, ई-कॉमर्स और व्यावसायिक सेवाएं शामिल होंगी। बैठक में यह भी कहा गया कि भारत के लिए आरसेप के दरवाजे खुले हैं।गौरतलब है कि भारत आरसेप वार्ताओं में शुरू से शामिल रहा, लेकिन नौ वर्षों तक चली व्यापार वार्ता के बाद नवंबर 2019 में भारत ने इस समझौते से कदम पीछे खींच लिए थे। उस समय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि समाज के कमजोर वर्गों और उनकी आजीविका पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में सोचकर उन्होंने आरसेप से पीछे हटने का फैसला लिया है। प्रधानमंत्री ने यह फैसला फिक्की, एसोचैम जैसे अग्रणी उद्योग संगठनों और भारत सरकार द्वारा गठित सलाहकार समिति की सिफारिशों को ठुकराते हुए लिया था।

दरअसल मुक्त व्यापार के कई कटु अनुभवों को देखते हुए प्रधानमंत्री ने आरसेप से अलग होने का फैसला लिया था। वर्ष 2002 में आसियान और चीन के बीच मुक्त व्यापार समझौता हुआ था, लेकिन इससे आसियान देशों की तुलना में चीन को ही अधिक फायदा हुआ। 2010 में भारत और आसियान के बीच हुए मुक्त व्यापार समझौते के बाद भारत में बागवानी किसानों को बहुत नुकसान उठाना उड़ा, क्योंकि सस्ते आयात से नारियल, कॉफी, काली मिर्च और रबड़ की कीमतें तेजी से कम हुईं। सबसे बड़ी बात यह रही कि आसियान और चीन के बीच हुए मुक्त व्यापार समझौते की आड़ में चीन में बनीं वस्तुएं आसियान देशों के रास्ते भारत में धड़ल्ले से डंप की जाने लगीं। आज देश के सभी शहरों के

मुख्य बाजार चीनी वस्तुओं से भरे पड़े हैं तो उसका कारण मुक्त व्यापार की नीतियां ही हैं। स्पष्ट है आरसेप समझौते से किसानों, छोटे उद्यमियों और कारोबारियों को भारी नुकसान उठाना पड़ता।

चीन-अमेरिका संघर्ष और कोविड-19 ने चीन पर व्यापार एवं निवेश संबंधी निर्भरता के खतरे को उजागर करने का काम किया है। भारत को डर है कि आरसेप समझौते के सहारे चीन इस क्षेत्र में अपनी सैन्य और आर्थिक वर्चस्व को थोपेगा। यह भी देखना होगा कि चीन के साथ भारत के व्यापार घाटे की मात्रा आरसेप के अन्य सभी देशों को मिलाकर होने वाले घाटे से भी ज्यादा है। यदि भारत आरसेप में शामिल होता तो आयात शुल्क खत्म हो जाने के कारण चीन से विनिर्मित वस्तुएं, ऑस्ट्रेलिया से अनाज और न्यूजीलैंड से डेयरी उत्पादों का धड़ल्ले से आयात होने लगता। भारत की एक बड़ी आपत्ति सीमा शुल्क के आधार वर्ष को लेकर है। भले ही आरसेप 2022 में लागू होगा, लेकिन सीमा शुल्क का आधार 2014 ही रखा गया है। चूंकि उस समय यह बहुत कम था, ऐसे में आयात तेजी से बढ़ता जिससे आत्मनिर्भर भारत अभियान को झटका लगना तय था। सबसे बड़ा खतरा भारत में तेजी से विकसित हो रहे मोबाइल एवं इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण को था, क्योंकि आरसेप के जरिये चीन विनिर्मित वस्तुओं का आयात बढ़ जाता। आरसेप में एक प्रावधान यह भी है कि यदि कोई देश आरसेप के अलावा किसी दूसरे देश को अपने यहां निवेश करने पर अलग से कुछ फायदा देता है तो वही फायदा आरसेप देशों को भी देना पड़ेगा। इस प्रावधान पर भारत को कड़ी आपत्ति है, क्योंकि इससे भारत की द्विपक्षीय व्यापार वार्ताएं प्रभावित होंगी।

आलोचक यह तर्क दे रहे हैं कि मोदी सरकार ने 2024 तक घरेलू अर्थव्यवस्था को पांच लाख करोड़ डॉलर का बनाने का लक्ष्य तय किया है। ऐसे में विश्व की 30 फीसद जीडीपी और दुनिया की एक-तिहाई आबादी वाले आर्थिक संगठन की अनदेखी करने से इस भारी भरकम लक्ष्य को भारत कैसे हासिल करेगा। कई विशेषज्ञों का मानना है कि समझौते से पीछे हटने से भारत एक बड़े क्षेत्रीय बाजार से बाहर हो जाएगा। सबसे तीखी प्रतिक्रिया चीन से आई। चीन के अखबारों एवं मीडिया ने इसे भारत की रणनीतिक भूल करार दिया जिससे भारत आर्थिक रिकवरी करने से चूक जाएगा, लेकिन यह आलोचना ठीक नहीं है।तीन देशों ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और चीन को छोड़ दिया जाए तो आसियान के सभी दस देशों और जापान एवं दक्षिण कोरिया के साथ भारत का मुक्त व्यापार समझौता हुआ है। विडंबना यह है कि मुक्त व्यापार समझौता होने के बाद से ही आसियान देशों और जापान एवं दक्षिण कोरिया से भारत का व्यापार घाटा बढ़ता गया। इन्हीं कटु अनुभवों को देखते हुए भारत ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका, ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के साथ चल रही मुक्त व्यापार वार्ताओं में बहुत सतर्क रवैया अपना रहा है।

समग्रत: मुक्त व्यापार समझौतों से मिले कटु अनुभवों को देखते हुए ही भारत आरसेप से किनारा करने का फैसला किया है। भारत की अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोपीय संघ, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के साथ चल रही द्विपक्षीय मुक्त व्यापार वार्ताओं में हो रही देरी का कारण भी यही है। स्पष्ट है मोदी सरकार मुक्त व्यापार नीतियों को इस तरह तर्कसंगत बना रही है, ताकि वे भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए फायदे का सौदा बनें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:30-11-20

रिकवरी की राह लंबी

संपादकीय

भारतीय अर्थव्यवस्था ने चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में अधिकांश अनुमानों से बेहतर प्रदर्शन किया और सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में संकुचन 7.5 फीसदी ही रहा जबकि पहली तिमाही में करीब 24 फीसदी संकुचन हुआ था। तमाम विश्लेषक जुलाई-सितंबर तिमाही में कम-से-कम 8 फीसदी संकुचन की आशंका जता रहे थे लेकिन तिमाही के आंकड़े सामने आए तो बाजार में हुए हालिया आशावादी संशोधन भी पीछे छूट गए। जीडीपी में अनुमान से कम गिरावट ने जल्दी से हालात में सुधार की उम्मीदें जगाने का काम किया है। भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के अर्थशास्त्री अब उम्मीद कर रहे हैं कि तीसरी तिमाही में ही जीडीपी संकुचन के इस दौर से उबर जाएगा।

लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था की पीड़ा का अंत जल्द होने की संभावना कम ही है। आर्थिक गतिविधि में क्रमानुसार सुधार होने की व्यापक अपेक्षाएं होने के बावजूद कोविड-19 मामलों में दोबारा उछाल आने पर भरोसे एवं मांग पर फिर से बुरा असर पड़ सकता है। इसके अलावा दूसरी तिमाही के आंकड़े भले ही अपेक्षा से बेहतर रहे हैं लेकिन उनसे निकट भविष्य में उपभोक्ताओं एवं निवेशकों का विश्वास शायद ही बढ़े। मसलन, सबसे बड़ा आश्चर्य विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि का था। हालांकि 0.6 फीसदी की बढ़त पिछले साल की समान अवधि में आए संकुचन के बरक्स है। समग्र स्तर पर भी यह ध्यान रखना होगा कि पिछले वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में वृद्धि फिसलकर 4.4 फीसदी पर आ गई थी। इस तरह चालू वर्ष में दर्ज किए जा रहे बदलाव सापेक्षिक रूप से कमजोर आधार के नाते हैं। यह संभावना भी है कि रुकी हुई एवं त्योहारी मांग दोनों ने ही दूसरी तिमाही में अस्थायी बढ़ावा दिया है लेकिन यह लगातार जारी नहीं रह सकता है। बिजली उत्पादन एवं गतिशीलता जैसे कुछ अग्रणी संकेतक पहले से ही नरमी का इशारा कर रहे हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय ने अपने प्रेस नोट में आंकड़ों से संबंधित मुद्दों को रेखांकित किया है जिससे जीडीपी अनुमान में बड़ा संशोधन भी हो सकता है। ये आंकड़े संभवत: असंगठित क्षेत्र की हालत को सही तरह से नहीं दर्शा रहे हैं जिसके संगठित क्षेत्र की तुलना में अधिक प्रभावित होने की आशंका है। लिहाजा अधिक सटीक अनुमान तक पहुंचने में थोड़ा वक्त लग सकता है।

रिकवरी की राह में सबसे बड़ा जोखिम कोविड मामलों में फिर से उछाल आने की आशंका ही है। अमेरिका जैसे कई देशों में कोविड संक्रमण के मामलों में दोबारा उछाल देखने को मिल रही है। भले ही टीके के विकास से जुड़ी खबरें उत्साह जगाने वाली हैं लेकिन व्यापक जनसंख्या के लिए यह नहीं उपलब्ध होने वाला है। नीतिगत हस्तक्षेप के संदर्भ में मुद्रास्फीति की हालत को देखते हुए मौद्रिक नीति समिति इस सप्ताह होने वाली अपनी बैठक में नीतिगत ब्याज दर को अपरिवर्तित रखने का ही फैसला कर सकती है, हालांकि आरबीआई को अपनी वृद्धि एवं मुद्रास्फीति पूर्वानुमानों में संशोधन की जरूरत पड़ेगी। राजकोषीय मोर्चे पर सरकार ने दूसरी तिमाही में बेहतर प्रदर्शन किया है लेकिन राजस्व संग्रह में सुधार होने से दूसरी छमाही में अधिक खर्च की गुंजाइश बन सकती है। हालांकि नीतिगत विमर्श जल्द ही बजट संबंधी अपेक्षाओं पर केंद्रित हो जाएगा। सरकार से अगले वित्त वर्ष से कुछ राजकोषीय मजबूती दिखाने की अपेक्षा होगी और उसे बढ़े हुए खर्च को समर्थन देने के लिए राजस्व में वृद्धि पर निर्भर रहना पड़ सकता है।

व्यापक स्तर पर भले ही आर्थिक वृद्धि में योगदान देने वाले प्रमुख आंकड़े आने वाली तिमाहियों में बेहतर होंगे लेकिन निरपेक्ष रूप में अर्थव्यवस्था शायद वित्त वर्ष 2021-22 के अंत तक ही महामारी-पूर्व की स्थिति में पहुंच पाएगी। भारतीय

अर्थव्यवस्था की रिकवरी का यह रास्ता लंबा होगा। मध्यम अवधि में तो परिदृश्य काफी हद तक अनिश्चित ही नजर आ रहा है।

जनसत्ता

Date:30-11-20

राहत बनाम संकट

संपादकीय

दूसरी तिमाही (जुलाई-सितंबर 2020) के जीडीपी के आंकड़े इस बात का संकेत दे रहे हैं कि देश की अर्थव्यवस्था अब संकट के दौर से निकलने लगी है। अभी राहत की बात सिर्फ इतनी ही है कि पहली तिमाही के मुकाबले दूसरी तिमाही में गिरावट का प्रतिशत उल्लेखनीय रूप से कम रहा। पहली तिमाही में अर्थव्यवस्था में 23.9 फीसद की गिरावट दर्ज की गई थी, वहीं दूसरी तिमाही में यह प्रतिशत घट कर साढ़े सात अंक पर आ गया। गिरावट की रफ्तार का कम पड़ना बता रहा है कि औद्योगिक गतिविधियां अब जोर पकड़ने लगी हैं। हालांकि तमाम रेटिंग एजेंसियों और वित्तीय संस्थानों को इस बात की उम्मीद नहीं थी कि हालात तेजी से सुधरने लगेंगे, इसीलिए रेटिंग एजेंसियों के अनुमान हालात की गंभीरता को कहीं ज्यादा आंक रहे थे और दूसरी तिमाही में गिरावट की दर दस फीसद से ऊपर रहने की बात कर रहे थे। लेकिन दूसरी तिमाही के आंकड़ों ने इन्हें गलत साबित करते हुए अर्थव्यवस्था में जोश पैदा किया है। इससे इतनी उम्मीद तो बंधी है कि तीसरी तिमाही के आंकड़े दूसरी से बेहतर नहीं, तो कम भी नहीं रहेंगे। संतोषजनक यह है कि कृषि क्षेत्र, विनिर्माण क्षेत्र और बिजली क्षेत्र के प्रदर्शन ने अर्थव्यवस्था में जान फूंकने में बड़ा योगदान दिया। हालांकि कृषि क्षेत्र की स्थिति पहली तिमाही में भी अच्छी रही थी और यही एकमात्र ऐसा क्षेत्र रहा, जिसमें वृद्धि दर शून्य से ऊपर ही बनी रही।

दूसरी तिमाही में अर्थव्यवस्था में सुधार का बड़ा कारण यह रहा कि पूर्णबंदी का दौर लगभग खत्म हो जाने से व्यापारिक गतिविधियों ने जोर पकड़ा। अक्तूबर में त्योहारी मांग निकलने से बाजारों में तेजी रही। वाहनों और उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री में तेजी आई। इन सबका असर दूसरे उद्योगों पर भी पड़ा। कच्चे माल की आपूर्ति से लेकर उत्पादन तक की प्रक्रिया में उद्योग एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। इसलिए बिजली, गैस, जलापूर्ति जैसे क्षेत्रों में 4.4. फीसद की वृद्धि दर्ज की गई। विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि भले 0.6 फीसद रही हो, लेकिन यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि पहली तिमाही में इसमें उनतालीस फीसद से ज्यादा की गिरावट आई थी। कारखानों और फैक्ट्रियों के चक्के चल जाने से इन पर निर्भर छोटे उद्योगों में भी फिर से जान आ गई है। अर्थव्यवस्था और उद्योगों की रीढ़ माने जाने छोटे और लघु उद्योगों का खड़ा होना बहुत जरूरी है, क्योंकि बड़े उद्योगों को ज्यादातर कच्चा माल यही तैयार करके देते हैं।

लेकिन दूसरी तिमाही के आकंड़ों से हमें खुश होकर बैठ नहीं जाना है। असल चुनौतियां बरकरार हैं। सुधार के संकेत सिर्फ कुछ ही क्षेत्रों से आए हैं। सबसे चिंताजनक तो यह है कि अर्थव्यवस्था में चालीस फीसद तक योगदान करने वाले सेवा

क्षेत्र की हालत खस्ता बनी हुई है। दूसरी तिमाही में सेवा क्षेत्र में दस फीसद से ज्यादा की गिरावट रही।जाहिर है, पर्यटन व इससे जुड़े कारोबार, संचार व अन्य सेवाओं में मांग अभी ठंडी पड़ी है। रीयल एस्टेट क्षेत्र की हालत भी खराब ही है। संकट अभी यह है कि बड़ी संख्या में लोगों के पास काम-धंधा नहीं है। पूर्णबंदी के दौरान जिन लोगों की नौकरियां चली गईं, उन्हें फिर से काम मिल नहीं रहा। असंगठित क्षेत्र के कामगारों की हालत तो और बुरी है।लोगों के पास रोजमर्रा के खर्च के पैसे भी नहीं हैं। महंगाई ने कमर तोड़ कर रख दी है। ऐसे में कैसे मांग में तेजी आएगी, यह बड़ा सवाल है। कहने को सरकार ने प्रोत्साहन पैकेज दिए हैं, लेकिन जब तक लोगों के हाथ में नगदी नहीं आएगी, तब तक आर्थिकी के चक्र को चला पाना आसान नहीं होगा।

Date:30-11-20

भ्रष्टाचार की जड़ें

संपादकीय

भ्रष्टाचार के मामले में भारत का स्थान एक बार फिर एशिया में सबसे ऊपर दर्ज किया गया है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के ताजा सर्वेक्षण के मुताबिक यहां उनतालीस फीसद लोगों को रिश्वत देकर अपना काम कराना पड़ता है। छियालीस प्रतिशत लोगों को प्रशासनिक अधिकारियों तक पहुंचने के लिए निजी संपर्कों का सहारा लेना पड़ता है। इस साल यह आंकड़ा पिछले सालों की तुलना में कुछ बढ़ा हुआ ही है। यह तब है जब पिछले छह सालों में भ्रष्टाचार दूर करने का नारा बहुत जोर-शोर से लगता आ रहा है और अनियमितताएं दूर करने, प्रशासनिक कामकाज में पारदर्शिता लाने के लिए सरकार ने अनेक कड़े उपाय किए हैं। दफ्तरों में समय पर अधिकारियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए बायोमीट्रिक हाजिरी प्रणाली लगाई गई।तमाम दफ्तरों को इंटरनेट के माध्यम से जोड़ा गया और आम लोगों को अपनी शिकायतें दर्ज कराने, छोटे-मोटे दस्तावेज प्राप्त करने संबंधी अर्जियां देने आदि की आनलाइन व्यवस्था की गई। कई सेवाओं के लिए सरकारी कार्यालयों की खिड़कियों पर कतार लगाने की जरूरत समाप्त कर दी गई। माना गया कि इससे सरकारी कामकाज में पारदर्शिता आएगी और आम लोगों को अनावश्यक बाबुओं की बेईमानियों का शिकार नहीं होना पड़ेगा। मगर इन सब कुछ के बावजूद अगर रिश्वतखोरी की दर पहले से बढ़ी दर्ज हुई है तो हैरानी स्वाभाविक है।

केंद्र सरकार दावा करते नहीं थकती कि उसने भ्रष्टाचार पर काफी हद तक रोक लगाने में कामयाबी हासिल की है और प्रशासनिक कामकाज में पारदर्शिता आई है। मगर ताजा आंकड़ों में हकीकत कुछ और ही नजर आ रही है। भ्रष्टाचार पर काबू पाना इसलिए भी जरूरी माना जाता है कि इसके बिना विकास कार्यों में गति नहीं आ सकती। बाबुओं में रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति बनी रहने से अनेक परियोजनाएं बेवजह लटकाई जाती रहती हैं। फिर उनमें रिश्वत का चलन होने से लागत भी बढ़ती रहती है। मगर आर्थिक विकास पर जोर देने और आम लोगों और प्रशासन के बीच की दूरी खत्म करने के दावों के बावजूद अगर रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति पर काबू नहीं पाया जा सका है और प्रशासनिक अधिकारियों की जनता से दूरी बढ़ती गई है, तो यह सरकार की विफलता ही कही जाएगी।

भारत में रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति इस कदर जड़ें जमा चुकी है कि आम लोगों में यह धारणा दृढ़ हो गई है कि बिना रिश्वत के कोई काम हो ही नहीं सकता। अपनी जमीन-जायदाद के दस्तावेजों की नकल लेने जैसे छोटे-मोटे काम भी बिना

रिश्वत के नहीं होते। कचहरियों और जिला कार्यालयों में तो अलग-अलग कामों के लिए रिश्वत की दरें तक तय हैं। इस तरह बहुत सारे लोग अधिकारियों को रिश्वत देकर गैरकानूनी तरीके से अपना काम कराते रहते हैं और वास्तविक हकदारों को उनका हक नहीं मिल पाता। रिश्वतखोरी और जनता से अधिकारियों की दूरी, दोनों आपस में जुड़े हुए हैं। अधिकारियों से लोगों की नजदीकी बढ़ेगी, वे उनकी समस्याएं सीधे सुनने लगेंगे, तो रिश्वत का चक्र टूट जाएगा। एक लोकतांत्रिक देश में इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि वहां के नागरिक अपने लोकसेवकों से सीधे न मिल पाएं, उसके लिए उन्हें किसी संपर्क सूत्र की जरूरत पड़े।अंदाजा लगाया जा सकता है कि ऐसे में लोग अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों से कहां तक मिल पाते होंगे। सरकार अगर सचमुच सरकारी कामकाज में पारदर्शिता लाने, भ्रष्टाचार पर काबू पाने को लेकर प्रतिबद्ध है, तो उसे नौकरशाही और नागरिकों के बीच की दूरी को खत्म करने का प्रयास करना चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:30-11-20

कारोबारी घरानों का बैंकिंग में प्रवेश

जिन उद्योग समूहों को स्वयं कर्ज की जरुरत नहीं पढ़ती रहती है, उन्हें बैंक खोलने की इजाज़त देने से पहले पूरा सोच समझ लेना चाहिए

आलोक जोशी, वरिष्ठ पत्रकार

भारतीय रिजर्व बैंक को ट्विटर पर 10 लाख से ज्यादा लोग फॉलो करने लगे हैं। दुनिया के किसी भी केंद्रीय बैंक के पास इतने सारे फॉलोअर्स नहीं हैं। जिस दिन यह खबर आई, उसी दिन एक और खबर आई, जिसने तहलका मचा रखा है। खबर यह है कि रिजर्व बैंक के एक कार्य समूह के उस प्रस्ताव पर सहमति बन गई है, जिसमें कहा गया है कि बड़े कारोबारी घरानों को बैंकिंग कारोबार में सीधे प्रवेश की इजाजत दे देनी चाहिए। मतलब अब टाटा, अंबानी, अडानी और ऐसे ही अनेक दूसरे बड़े सेठ अपने-अपने बैंक खोल सकते हैं। यही नहीं, रिजर्व बैंक के इस वर्किंग ग्रुप ने जो सुझाव दिए हैं, वे मान लिए गए, तो फिर बजाज फाइनेंस, एलऐंडटी फाइनेंशियल सर्विसेज या महिंद्रा समूह

की एमऐंडएम फाइनेंशियल जैसी एनबीएफसी कंपनियां सीधे बैंक में तब्दील हो सकेंगी। इनके अलावा भी अनेक एनबीएफसी कंपनियों के बैंक बनने का रास्ता खुल जाएगा, जिनकी कुल संपत्ति 50 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा हो और जिन्हें 10 साल का अनुभव हो।

रिजर्व बैंक ने इस रिपोर्ट पर सुझाव मांगे हैं, जो 15 जनवरी तक दिए जा सकते हैं, और उसके बाद बैंक अपना फैसला करेगा। इसे लागू करने के लिए बैंकिंग रेगुलेशन कानून में बड़े बदलाव करने होंगे। लेकिन उससे पहले इस विवादास्पद प्रस्ताव पर तीखी बहस होने की पूरी आशंका है। खबर सामने आने के एक ही दिन बाद पूर्व आरबीआई गवर्नर रघुराम राजन, पूर्व डिप्टी गवर्नर विरल आचार्य और एस एस मूंदड़ा के अलावा अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी एसऐंडपी ने भी इस प्रस्ताव पर सवाल उठा दिए हैं।

रघुराम राजन और विरल आचार्य का कहना है कि बड़े बिजनेस घरानों को पूंजी की जरूरत पड़ती रहती है और अगर उनका अपना बैंक हो, तो इसका इंतजाम करना बाएं हाथ का काम हो जाता है। लेकिन यही समस्या की जड़ भी है। वे कहते हैं कि इतिहास में अंदरखाने का ऐसा लेन-देन हमेशा खतरनाक साबित हुआ है। आखिर बैंक का मालिक ही कर्ज लेकर न लौटाने की सोच ले, तो उसे पकड़ेगा कौन? हालांकि वे मानते हैं कि एक निष्पक्ष और स्वतंत्र रेगुलेटर अच्छे और खराब की पहचान कर सकता है, लेकिन तब रेगुलेटर को सच्चे अर्थों में आजाद होना जरूरी है। उनका यह भी कहना है कि सारी दुनिया की तमाम जानकारी सामने होने के बाद भी, पूरी तरह निष्पक्ष और प्रतिबद्ध रेगुलेटर के लिए भी, सिस्टम के कोने-कोने में झांककर गड़बड़ियां पकड़ना बहुत मुश्किल है। यस बैंक काफी लंबे समय तक अपनी गड़बड़ियां छिपाए रखने में कामयाब रहा।

बैंक अधिकारियों के संगठन एआईबीओसी के पूर्व महासचिव थॉमस फ्रैंको याद दिलाते हैं कि रिजर्व बैंक 1992 से ही बैंक लाइसेंस की शर्तों में लगातार ढील देता जा रहा है। लेकिन तब से अब तक जिन 10 बैंकों को लाइसेंस मिले, उनमें से चार अब अस्तित्व में नहीं हैं। उनका कहना है कि अमेरिका में बड़े कारोबारी घरानों की बैंक में हिस्सेदारी पूरी तरह प्रतिबंधित है।

पिछले ही साल भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण की स्वर्ण जयंती मनाई गई थी। 1969 में जब इंदिरा गांधी सरकार ने 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया, तब इन बैंकों के पास देश की जनता का 85 प्रतिशत से ज्यादा पैसा जमा था। सरकार को एक डर था और एक शिकायत थी। डर यह था कि बड़े सेठों के ये बैंक जनता की जमा की गई रकम उन्हीं सेठों के दूसरे कारोबारों में लगाने के लिए बेरोकटोक कर्ज दे सकते थे और अगर धंधा सही नहीं चला, तो पैसा डूबने का खतरा था। और शिकायत यह थी कि ये बैंक सरकार की विकास योजनाओं में खुले दिल से भागीदार नहीं बन रहे थे और खासकर गांवों में व गरीब लोगों को कर्ज देने में कंजूसी बरतते थे।

हालांकि, आजादी के बाद 1949 में ही सरकार बैंकिंग कारोबार को नियंत्रित करने का कानून ले आई थी। फिर भी, 1951 से 1968 तक के आंकड़े चिंताजनक थे। इस दौरान बैंकों से निजी व्यापार और बड़े उद्योगों को दिया जाने वाला कर्ज करीब-करीब दोगुना हो गया था। बैंकों से दिए जाने वाले कुल कर्ज में इसका हिस्सा 34 प्रतिशत से बढ़कर इन्हीं 17 वर्षों में 68 फीसदी हो गया। जबकि खेती को मिला सिर्फ दो प्रतिशत। सरकार का तर्क था कि बैंक अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने में नाकाम रहे हैं और इसकी सजा के तौर पर ही उनकी कमान ले ली गई है। 1980 में छह और बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण किया गया।

पिछले कुछ वर्षों में बैंकों के डूबे कर्ज या एनपीए लगातार सुर्खियों में हैं। अनुमान है कि लगभग 10 लाख करोड़ रुपये के कर्ज अधर में हैं। राज्यसभा में जुलाई 2018 में सरकार की ओर से दिए गए एक जवाब के मुताबिक, उस साल मार्च में बैंकों के डूबे हुए कर्ज का आंकड़ा नौ लाख 62 हजार करोड़ रुपये था। इसमें से 73.2 प्रतिशत, यानी सात लाख करोड़ से बड़ी रकम उद्योगों को दिया गया कर्ज था। ऐसे में, अब अगर इन्हीं को बैंक खोलने की इजाजत मिल गई, तो क्या होगा, सोचना मुश्किल नहीं है।

राजन और आचार्य का एक तर्क यह भी है कि इससे कुछ बड़े व्यापारी घरानों की ताकत बहुत बढ़ जाएगी, पैसे की ताकत भी और राजनीति पर असर डालने की भी। डर यह भी है कि कर्ज में डूबे हुए राजनीतिक रसूख वाले व्यापारियों को बैंक का लाइसेंस हासिल करने की जरूरत भी ज्यादा होगी और उनके लिए शायद यह आसान भी हो जाए। कुछ ही साल पहले दो ऐसे उद्योगपति अपने बैंक खोलने की राह पर काफी आगे बढ़ चुके दिख रहे थे, जो आज दिवालिया हो चुके हैं। यह सवाल इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि आजादी के बाद से अब तक भारत में कोई भी शिड्यूल्ड कॉमर्शियल बैंक डूबा नहीं है। अंत में खातेदारों की मदद के नाम पर भरपाई की जिम्मेदारी सरकारी खजाने या करदाताओं की ही होती है।

इसीलिए जरूरी है कि न सिर्फ बैंक से जुड़े लोग, बैंकों के कर्मचारी और अफसर या खातेदार, बल्कि देश के सभी लोग इस मामले की गंभीरता को समझें और सरकार पर दबाव बनाएं कि इस मामले में दुर्घटना से देर भली वाली नीति ही बेहतर है। वरना दुष्यंत कुमार का यह शेर याद रखें- दुकानदार तो मेले में लुट गए यारो, तमाशबीन दुकानें लगा के बैठ गए।

Date:30-11-20

आत्मनिर्भरता से बेहतर कोई हथियार नहीं

धीरे-धीरे पता लग रहा की राजनीतिक,अर्थव्यवस्था,टेक्नोलॉजी, व कूटनीति का तिलिस्मी मोर्चा तैयार करता है |

सुरेंद्र पाल गौड़ , (भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी)

भारत सरकार 220 चीनी एप पर प्रतिबंध लगा चुकी है। देश की संप्रभुता के विरुद्ध गतिविधियों में लिप्त होने के कारण इन एप्स को बंद किया गया है। खतरे को देखते अन्य प्रमुख देशों ने भी कुछ चीनी एप्स को बंद किया है। अमेरिका में टिक-टॉक को प्रतिबंधित किया गया, हालांकि कोर्ट के आदेश पर प्रतिबंध हटा दिया गया। आखिर ये चीनी एप्स किसी देश की संप्रभुता के विरुद्ध कैसे काम करते हैं? चीन अन्य देशों की संप्रभुता खंडित करने के लिए एप्स के साथ और कौन-कौन से हथियार प्रयोग कर रहा है। चीन की नीतियों को समझना इतना आसान भी नहीं है। आजादी के बाद भारत सरकार चीन की असली मंशा समझ नहीं पाई। एशियाई राजनीति में पंचशील का सिद्धांत निहारते हुए हम सीमा पर चीनी सैन्य तैयारियों को नजरअंदाज करते रहे। धीरे-धीरे पता लग रहा है कि चीन राजनीति, अर्थव्यवस्था, टेक्नोलॉजी व

कूटनीति का एक तिलिस्मी मोर्चा तैयार करता है। अपने सभी पड़ोसी व प्रतिस्पद्र्धी देशों के साथ वह यही नीति अपनाता है। वैश्विक शक्ति बनने की अपनी चाह को वह दीर्घकालिक उद्देश्य के रूप में सामने रखता है। अल्पकालीन हितों से समझौते में गुरेज भी नहीं करता।

एप्स के माध्यम से की जा रही चीनी राजनीतिक और व्यावसायिक जासूसी पर गौर करना चाहिए। अमेरिका ने अपनी तकनीकी संपदा की चोरी का आरोप लगाकर हुआवेई नामक चीनी कंपनी को प्रतिबंधित किया है। यूरोपीय देश भी इस कंपनी का विकल्प खोज रहे हैं। भारत ही नहीं, सभी देशों को शक है कि चीनी सरकार एप्स के माध्यम से अन्य देशों से सूचनाएं एकत्र करवाती है और इन सूचनाओं का उपयोग अपने व्यापारिक व राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने में करती है। सर्वविदित है कि चीन अपनी आयात-निर्यात नीति में खूब कामयाब हो रहा है। अपना सामान तो भारत को प्रत्यक्ष या परोक्ष निर्यात करता है, मगर भारतीय निर्यात को खपाने में हीला-हवाला करता है। फलस्वरूप भारत लगातार भारी व्यापार घाटे में बना रहता है। एक अनुमान के अनुसार, भारत ने वित्त वर्ष 2019-20 मे चीन से 65.26 अरब डॉलर का आयात किया, परंतु निर्यात मात्र 16.26 अरब डॉलर का ही रहा। चीन की एकतरफा बढ़त बनी हुई है। बावजूद इसके चीन सरकार और बैंक भारत के मोबाइल निर्माण, बैंकिंग और इंफ्रास्ट्रक्चर में सीधे विनिवेश कर रहे हैं। यह गंभीर विषय है और इसका समाधान शीघ्र ही करना होगा। भारतीय त्योहारों पर चीनी सामान के बहिष्कार मात्र से इसका हल नहीं निकलेगा।

चीन सरकार बाजार पर मजबूत पकड़ रखती है। भारतीय कंपनियां न तो इतना गहन बाजार-शोध करती हैं और न ही उनको निर्यात में इतनी कामयाबी मिलती है। चीनी तंत्र के मकसद की जानकारी बहुत से देशों को है, पर शी जिनपिंग ने जिस तरह राजनीति, अर्थव्यवस्था और टेक्नोलॉजी का गठबंधन किया है, यह जानकारी शायद सभी देशों और संस्थाओं को नहीं है। उदाहरण के लिए, अमेरिकी विरोध के बावजूद चीन ने अपनी मुद्रा दशकों तक सस्ती बनाए रखी, जिसका फायदा निर्यात में मिला। इसी तरह चीन अमेरिका से हरचंद आर्थिक मदद लेता रहा और टेक्नोलॉजी भी चुराता रहा। वर्षों से चीन दोस्ती का दिखावटी मुखौटा पहनकर भारत से दुश्मनी निभाने में कोई कसर नहीं छोड़ता है। इस दिशा में चीन व पाकिस्तान के दीर्घकालीन हित एकाकार हो जाते हैं।

आजकल युद्ध आर्थिक मोर्चे पर लड़े जाते हैं। लड़ाई के उपकरण भी बदल गए हैं। चीन अपने को वैश्विक शक्ति बनाने के लिए बरसों से सैन्य व आर्थिक मोर्चे पर दीर्घकालीन प्रयास कर रहा है। उसने रणनीति के तहत रूस से संबंध सुधारे और कुछ देशों की मदद करने का दिखावा करता रहा है। चीन की विस्तारवादी नीतियों में सुधार की आशा नहीं है। अत: दूरदर्शी दीर्घकालीन नीति बनाकर भारत को कई मोर्चों पर लड़ना होगा। ऐसे में, रक्षा उपकरणों में आत्मनिर्भरता की शुरुआत एक बुद्धिमानी भरा निर्णय है। कच्चे माल के लिए चीन पर निर्भरता जल्द से जल्द कम करने की दिशा में बढ़ना होगा।

याद रखें, अनाज उत्पादन में भारत तब आत्मनिर्भर बना, जब अमेरिका ने गेहूं की आपूर्ति बंद कर दी। सुपर कंप्यूटर की भी लगभग यही कहानी है। सफलता धीरे-धीरे मिलेगी, लेकिन ऐसे प्रतिद्वंद्वी को हराने के लिए आत्मनिर्भरता से बड़ा कोई हथियार नहीं है।